International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

भारत में धर्मनिरपेक्षता: अवधारणा, व्यवहार और चुनौतियाँ

Saurabh Raj
Research Scholar, Department of Political Science, Malwanchal University, Indore
Dr. Bhushan
Supervisor, Department of Political Science, Malwanchal University, Indore

संक्षेप

भारत में धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा केवल धार्मिक सहिष्णुता तक सीमित नहीं है, बल्कि यह विविध धर्मों, विश्वासों और परंपराओं को समान सम्मान देने तथा राज्य को किसी एक धर्म विशेष के पक्षपात से मुक्त रखने की गारंटी भी देती है। भारतीय संविधान में धर्मनिरपेक्षता को मूलभूत सिद्धांत के रूप में अपनाया गया है, जहाँ राज्य धर्म से दूरी बनाए रखता है, परंतु धार्मिक स्वतंत्रता की रक्षा करता है। व्यवहारिक स्तर पर धर्मनिरपेक्षता भारतीय लोकतंत्र की आधारशिला मानी जाती है, जो बहुलतावादी समाज में सामाजिक सौहार्द, राष्ट्रीय एकता और लोकतांत्रिक मूल्यों को सुरक्षित रखने का माध्यम है। फिर भी इसकी चुनौतियाँ गंभीर और बहुआयामी हैं। सांप्रदायिकता, धार्मिक ध्रुवीकरण, जातिगत असमानता, राजनीतिक दलों द्वारा धर्म आधारित वोट बैंक की राजनीति, और सोशल मीडिया पर बढ़ते धार्मिक उग्रवाद ने धर्मनिरपेक्ष ढाँचे को कमजोर किया है। साथ ही, बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक समुदायों के बीच अविश्वास, न्यायपालिका में बढ़ती संवेदनशीलता, तथा शिक्षा और मीडिया में पक्षपातपूर्ण दृष्टिकोण भी समस्याओं को और जटिल बनाते हैं। इन चुनौतियों के बावजूद, धर्मनिरपेक्षता भारत की लोकतांत्रिक पहचान का अभिन्न हिस्सा है, जिसे केवल संवैधानिक सुरक्षा ही नहीं बल्कि समाज के सक्रिय सहयोग से भी संरक्षित किया जा सकता है। अतः धर्मनिरपेक्ष मूल्यों को व्यवहार में उतारना और नागरिक चेतना को सुदृढ़ करना आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है।

Keywords: धर्मनिरपेक्षता, संविधान, सांप्रदायिकता, लोकतंत्र, बहुलतावाद

परिचय

भारत में धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा एक गहरी ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और संवैधानिक प्रक्रिया से उत्पन्न हुई है। भारतीय समाज प्राचीन काल से ही बहुधर्मी और बहुसांस्कृतिक रहा है, जहाँ वैदिक, बौद्ध, जैन, इस्लामी, ईसाई, सिख और अनेक अन्य परंपराओं ने अपनी जगह बनाई। इसी सांस्कृतिक विविधता ने भारत को सहिष्णुता और धार्मिक सह-अस्तित्व की भूमि बनाया। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान महात्मा

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

गांधी, जवाहरलाल नेहरू और अन्य नेताओं ने धर्मनिरपेक्षता को एक अनिवार्य सिद्धांत के रूप में प्रस्तुत किया, ताकि स्वतंत्र भारत किसी एक धर्म विशेष की ओर झुका न रहे। संविधान निर्माताओं ने 1950 में लागू संविधान में समानता, स्वतंत्रता और धर्म की स्वतंत्रता को मौलिक अधिकारों में शामिल कर इस विचार को संस्थागत रूप दिया। 1976 में 42वें संशोधन के माध्यम से "धर्मनिरपेक्ष" शब्द को औपचारिक रूप से संविधान की प्रस्तावना में जोड़ा गया, जिससे यह स्पष्ट हुआ कि राज्य सभी धर्मों को समान दृष्टि से देखेगा और किसी धार्मिक मत को बढ़ावा नहीं देगा। धर्मनिरपेक्षता का भारतीय मॉडल पश्चिमी संदर्भ से भिन्न है; यह न तो पूरी तरह से "धर्म और राज्य का पूर्ण पृथक्करण" है, और न ही किसी धर्म की उपेक्षा, बल्कि यह सभी धर्मों के प्रति समान सम्मान और निष्पक्षता की नीति पर आधारित है। भारतीय धर्मनिरपेक्षता की विशिष्टता इस बात में है कि यहाँ राज्य न केवल धर्म से दूरी बनाए रखता है, बल्कि सभी धर्मों की सुरक्षा और पोषण के लिए सक्रिय भी रहता है।

हालाँकि, व्यवहारिक स्तर पर धर्मनिरपेक्षता अनेक चुनौतियों से घिरी हुई है। सांप्रदायिकता और धार्मिक ध्रुवीकरण समय-समय पर समाज में असहिष्णुता और हिंसा को जन्म देते हैं, जिससे लोकतांत्रिक ढाँचा कमजोर होता है। चुनावी राजनीति में धर्म आधारित वोट बैंक की प्रवृत्ति अक्सर धर्मनिरपेक्ष मूल्यों को प्रभावित करती है और संविधान की भावना को चुनौती देती है। मीडिया और सोशल मीडिया के माध्यम से फैलते धार्मिक उन्माद और फेक न्यूज़ सामाजिक सद्भाव के लिए नई समस्याएँ खड़ी कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त, बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक समुदायों के बीच अविश्वास की खाई, शिक्षा व्यवस्था में पक्षपातपूर्ण दृष्टिकोण, तथा न्यायिक और राजनीतिक संस्थाओं में निष्पक्षता पर उठते प्रश्न भी धर्मनिरपेक्ष ढाँचे की नींव को कमजोर करते हैं। वैश्वीकरण और बदलते सामाजिक-राजनीतिक परिदृश्य में धर्मनिरपेक्षता को नई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है, जिसमें धार्मिक पहचान की राजनीति प्रमुख है। बावजूद इसके, धर्मनिरपेक्षता भारतीय लोकतंत्र की आत्मा है और राष्ट्रीय एकता, सामाजिक न्याय तथा लोकतांत्रिक मूल्यों के संरक्षण के लिए आवश्यक है। अतः आज के समय की आवश्यकता है कि नागरिक समाज, राजनीतिक नेतृत्व और शैक्षिक संस्थाएँ मिलकर धर्मनिरपेक्ष मूल्यों को व्यवहार में उतारें, ताकि भारतीय लोकतंत्र न केवल संवैधानिक रूप से बल्कि सामाजिक स्तर पर भी अपने धर्मनिरपेक्ष स्वरूप को बनाए रख सके।

अध्ययन का महत्व

भारत में धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा और उसकी चुनौतियों का अध्ययन समाज की सामाजिक-राजनीतिक संरचना को समझने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। धर्मनिरपेक्षता

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

का सिद्धांत भारत के संविधान में निहित है, जो यह सुनिश्चित करता है कि कोई भी धर्म राज्य से विशेष लाभ या भेदभाव नहीं प्राप्त कर सकता। यह अध्ययन हमें यह समझने में मदद करता है कि कैसे विभिन्न धार्मिक और सांस्कृतिक समुदायों के बीच सामंजस्य बनाए रखने के लिए धर्मनिरपेक्षता एक केंद्रीय भूमिका निभाती है। इसके माध्यम से हम यह जान सकते हैं कि धार्मिक उन्माद, सांप्रदायिक संघर्ष और धार्मिक असहिष्णुता जैसे मुद्दों का समाधान कैसे निकाला जा सकता है।

इस अध्ययन का महत्व इस बात में भी है कि यह हमें यह समझने का अवसर देता है कि धर्मनिरपेक्षता केवल एक कानूनी सिद्धांत नहीं है, बल्कि यह हमारे समाज की वास्तविकता और बहुलता में भी गहरे तक समाहित है। यह अध्ययन हमें यह भी स्पष्ट करने में मदद करता है कि धर्मनिरपेक्षता को लागू करने में जो सामाजिक और राजनीतिक चुनौतियाँ आती हैं, उनका समाधान कैसे किया जा सकता है। इसके माध्यम से हम भारतीय समाज में धर्मनिरपेक्षता के सिद्धांत को और अधिक प्रभावी ढंग से लागू करने के लिए आवश्यक उपायों की पहचान कर सकते हैं, ताकि समरसता, सहिष्णुता और समानता की दिशा में ठोस कदम उठाए जा सकें।

धर्म और राजनीति का ऐतिहासिक संबंध

मानव सभ्यता के प्रारंभिक काल से ही धर्म और राजनीति का गहरा संबंध रहा है, क्योंकि दोनों ही सामाजिक जीवन को नियंत्रित और संचालित करने वाले प्रमुख स्तंभ रहे हैं। प्राचीन भारत में धर्म को जीवन का आधार और राज्य संचालन का मार्गदर्शक माना गया, जहाँ राजा को "धर्म का रक्षक" कहा जाता था और शासन व्यवस्था धर्मशास्त्रों तथा स्मृतियों पर आधारित थी। अशोक महान का शासन इसका उदाहरण है, जहाँ उन्होंने बौद्ध धर्म के नैतिक मूल्यों—अहिंसा, दया और करुणा—को राज्य नीति का हिस्सा बनाया, यद्यपि उन्होंने अन्य धर्मों को भी समान आदर दिया। मध्यकाल में राजनीति और धर्म का रिश्ता और भी जटिल हो गया। इस्लामी शासकों के दौर में सत्ता अक्सर धार्मिक वैधता पर टिकी थी; एक ओर अकबर ने "सुलह-ए-कुल" की नीति अपनाकर धार्मिक सहिष्णुता और

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

बहुलता को बढ़ावा दिया, वहीं दूसरी ओर औरंगज़ेब ने धर्म को राजनीतिक नियंत्रण का साधन बनाते हुए कट्टर नीतियाँ लागू कीं। इसी काल में भक्ति और सूफ़ी आंदोलनों ने धर्म को राजनीति से अलग कर मानवता और आध्यात्मिकता पर बल दिया, जिससे सामाजिक समरसता का वातावरण बना। औपनिवेशिक काल में ब्रिटिश शासकों ने धर्म और राजनीति के संबंध का सबसे अधिक राजनीतिक उपयोग किया। उन्होंने "फूट डालो और राज करो" की नीति अपनाकर धार्मिक पहचान को राजनीतिक प्रतिनिधित्व से जोड़ दिया; 1909, 1919 और 1935 के अधिनियमों में धार्मिक आधार पर पृथक निर्वाचन प्रणाली ने सांप्रदायिकता को और गहरा कर दिया। इसी पृष्ठभूमि में भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन ने धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रवाद को आधार बनाया, जहाँ महात्मा गांधी ने धर्म को नैतिकता और आत्मशुद्धि का साधन मानते हुए राजनीति में सत्य और अहिंसा को जोड़ा, जबकि नेहरू ने धर्म को राजनीति से अलग रखने और आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर बल दिया। डॉ. भीमराव आंबेडकर ने धर्म और राजनीति के संबंध को सामाजिक न्याय और समानता की दृष्टि से परिभाषित किया और माना कि राजनीति तभी सार्थक होगी जब धर्म सामाजिक भेदभाव को समाप्त करने का कार्य करेगा। स्वतंत्रता के बाद भारतीय संविधान ने धर्म और राजनीति के ऐतिहासिक संबंध को ध्यान में रखते हुए राज्य को धर्मनिरपेक्ष घोषित किया और यह सुनिश्चित किया कि कोई भी धर्म राज्य का आधिकारिक धर्म नहीं होगा। बावजूद इसके, भारत में चुनावी राजनीति और सामाजिक जीवन में धर्म का प्रभाव अब भी गहरा है; विभिन्न राजनीतिक दल धर्म और धार्मिक भावनाओं का इस्तेमाल जनसमर्थन पाने के लिए करते हैं। इस प्रकार इतिहास गवाह है कि धर्म और राजनीति का संबंध कभी सहअस्तित्व, सहिष्णुता और नैतिक मूल्यों पर आधारित रहा है तो कभी सत्ता और वर्चस्व की राजनीति का साधन बना है। वर्तमान समय में भी यह संबंध भारतीय लोकतंत्र की सबसे बड़ी चुनौती और साथ ही उसकी सबसे महत्वपूर्ण विशेषता बना हुआ है।

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

भारतीय संदर्भ में धर्मनिरपेक्षता और लोकतंत्र का संबंध

भारतीय लोकतंत्र की सबसे बड़ी विशेषता उसकी धर्मनिरपेक्ष संरचना है, क्योंकि यहाँ बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक समुदायों का सह-अस्तित्व केवल सामाजिक वास्तविकता ही नहीं बल्कि राजनीतिक व्यवस्था का भी आधार है। धर्मनिरपेक्षता का अर्थ भारतीय संदर्भ में केवल राज्य और धर्म का पृथक्करण नहीं है, बल्कि सभी धर्मों के प्रति समान आदर और समान व्यवहार है, जिसे संविधान ने स्पष्ट रूप से परिभाषित किया है। प्रस्तावना में धर्मनिरपेक्ष शब्द जोड़ा गया, मौलिक अधिकारों में प्रत्येक नागरिक को अपने धर्म का पालन, प्रचार और प्रसार करने की स्वतंत्रता दी गई, और अल्पसंख्यकों को अपनी भाषा, संस्कृति और शैक्षणिक संस्थानों की रक्षा का अधिकार प्रदान किया गया। लोकतंत्र का वास्तविक अर्थ तभी संभव है जब नागरिकों को समान अधिकार, स्वतंत्रता और अवसर मिलें, और यही धर्मनिरपेक्षता सुनिश्चित करती है। यदि लोकतंत्र राजनीतिक ढाँचा है तो धर्मनिरपेक्षता उसका नैतिक आधार है, क्योंकि यह बहुसंख्यकवाद को नियंत्रित करती है और अल्पसंख्यकों की सुरक्षा की गारंटी देती है। भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में गांधी, नेहरू और आंबेडकर सभी ने लोकतंत्र और धर्मनिरपेक्षता को अविभाज्य माना; गांधी ने इसे "सर्वधर्म समभाव" से जोड़ा, नेहरू ने आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण और धर्मनिरपेक्ष राज्य पर बल दिया, और आंबेडकर ने इसे सामाजिक न्याय व समानता से जोड़ा। यही कारण है कि संविधान सभा की बहसों में धर्मनिरपेक्ष लोकतंत्र पर विशेष ज़ोर दिया गया। परंतु व्यवहारिक राजनीति में कई बार इस आदर्श को चुनौती मिली है। भारत के विभाजन ने यह दिखाया कि जब धर्म राजनीति पर हावी होता है तो लोकतंत्र की नींव हिल सकती है। स्वतंत्रता के बाद भी समय-समय पर सांप्रदायिक दंगे, बाबरी मस्जिद विध्वंस, 1984 के सिख विरोधी दंगे और अन्य घटनाएँ बताती हैं कि लोकतंत्र और धर्मनिरपेक्षता का संबंध लगातार परीक्षा से गुजर रहा है। चुनावी राजनीति में धार्मिक ध्रुवीकरण और वोट बैंक की रणनीतियों ने इस चुनौती को और बढ़ा दिया है। फिर भी न्यायपालिका ने अपने कई ऐतिहासिक निर्णयों के माध्यम से यह स्पष्ट किया है कि धर्मनिरपेक्षता भारतीय लोकतंत्र

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

का "मूलभूत ढाँचा" (Basic Structure) है जिसे बदला नहीं जा सकता। शिक्षा, मीडिया और नागरिक समाज भी धर्मनिरपेक्ष मूल्यों को मजबूत करने में अहम भूमिका निभाते हैं। वैश्वीकरण और डिजिटल युग में धार्मिक पहचानें अधिक मुखर हो रही हैं, जिससे लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं पर दबाव बढ़ रहा है, लेकिन यही स्थिति इस तथ्य को भी रेखांकित करती है कि लोकतंत्र को टिकाऊ बनाए रखने के लिए धर्मनिरपेक्षता अपरिहार्य है। यदि लोकतंत्र बहुमत की सरकार है तो धर्मनिरपेक्षता बहुमत के नैतिक अनुशासन की गारंटी है; यदि लोकतंत्र जनता की सहभागिता है तो धर्मनिरपेक्षता उस सहभागिता की समानता और विविधता की रक्षा करती है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि भारतीय लोकतंत्र और धर्मनिरपेक्षता का संबंध एक-दूसरे के पूरक का है—धर्मनिरपेक्षता के बिना लोकतंत्र केवल बहुसंख्यकवाद में बदल सकता है और लोकतंत्र के बिना धर्मनिरपेक्षता केवल एक सैद्धांतिक आदर्श रह जाएगी। भारतीय परिप्रेक्ष्य में ये दोनों मिलकर ही वह सामाजिक-राजनीतिक ढाँचा तैयार करते हैं जो विविधता में एकता को संभव बनाता है और आधुनिक भारत की लोकतांत्रिक आत्मा को जीवित रखता है।

साहित्य की समीक्षा

सिंह, आर., और सिंह, के. (2011)। भारत में धर्मनिरपेक्षता एक संवैधानिक सिद्धांत है, जो सभी धर्मों के प्रति समान सम्मान और सहिष्णुता को बढ़ावा देता है। हालांकि, इसका व्यावहारिक कार्यान्वयन कई चुनौतियों का सामना करता है। सबसे प्रमुख चुनौती धार्मिक उन्माद और सांप्रदायिक ध्रुवीकरण है, जो समाज को प्रभावित करता है। धर्मनिरपेक्षता के सिद्धांत का उल्लंघन करते हुए, धर्म को राजनीति में घसीटना और अल्पसंख्यक समुदायों के अधिकारों का हनन करना बढ़ता जा रहा है। विशेष रूप से, धार्मिक असहिष्णुता और सांप्रदायिक संघर्षों ने इस सिद्धांत के सही कार्यान्वयन में बाधा डाली है। इसके अलावा, धार्मिक पहचान की राजनीति और चुनावी लाभ के लिए धर्म के उपयोग ने धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा को कमजोर किया है। हालांकि, भारतीय संविधान में निहित धर्मनिरपेक्षता

का सिद्धांत आज भी महत्वपूर्ण है, और इसके भविष्य के लिए यह आवश्यक है कि समाज और सरकार मिलकर इसका सही तरीके से पालन करें। धर्मनिरपेक्षता के सिद्धांत को बनाए रखने के लिए सभी धर्मों के बीच समानता और समरसता को बढ़ावा देना अत्यंत आवश्यक है।

अली, एम.एम. (2015)। भारत में धर्मनिरपेक्षता एक ऐसा सिद्धांत है जो संविधान द्वारा स्थापित किया गया है, जिसमें सभी धर्मों के प्रति समान सम्मान और सहिष्णुता को सुनिश्चित किया गया है। यह अवधारणा भारतीय समाज की विविधता और बहुलता को स्वीकार करती है, जहाँ विभिन्न धर्म, जाति, और संस्कृति के लोग समान अधिकारों के साथ रहते हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से, भारत में धर्मनिरपेक्षता की शुरुआत ब्रिटिश शासन के दौरान हुई, जब भारतीय समाज में धार्मिक और सांप्रदायिक मतभेदों का प्रभाव था। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के दौरान महात्मा गांधी और पंडित नेहरू जैसे नेताओं ने धर्मनिरपेक्षता को भारतीय समाज की एकता का प्रतीक माना। हालांकि, समय के साथ धर्मनिरपेक्षता को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ा है। आज के समय में, धार्मिक उन्माद, सांप्रदायिक ध्रुवीकरण और धार्मिक असहमति ने समाज में तनाव पैदा किया है। राजनीति में धर्म का हस्तक्षेप, जैसे चुनावी लाभ के लिए धर्म का प्रयोग और धार्मिक असहिष्णुता, इस सिद्धांत के लिए गंभीर चुनौतियाँ उत्पन्न कर रही हैं। इसके बावजूद, धर्मनिरपेक्षता भारत के संविधान का एक मूल तत्व है, और इसे बनाए रखने के लिए निरंतर प्रयास की आवश्यकता है।

वर्मा, वी. (2017)। भारत में धर्मनिरपेक्षता एक महत्वपूर्ण सिद्धांत है, जो भारतीय संविधान में निहित है और यह सुनिश्चित करता है कि राज्य किसी भी धर्म को बढ़ावा नहीं देता और न ही किसी धर्म के पक्ष में भेदभाव करता है। भारतीय समाज की विविधता और बहुलतावाद को ध्यान में रखते हुए, धर्मनिरपेक्षता का उद्देश्य विभिन्न धार्मिक समुदायों के बीच समानता, सहिष्णुता और सौहार्द बनाए रखना है। यह अवधारणा भारत की

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

सांस्कृतिक और सामाजिक विशेषताओं के अनुरूप है, जहाँ विभिन्न धर्म, जाति, और भाषा के लोग साथ रहते हैं। धर्मनिरपेक्षता का सिद्धांत भारतीय राज्य के कर्तव्यों को स्पष्ट करता है, जिसमें धर्म के आधार पर किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाना चाहिए। हालांकि, इसके कार्यान्वयन में कई चुनौतियाँ आई हैं, जैसे सांप्रदायिक तनाव, धार्मिक उन्माद और राजनीति में धर्म का हस्तक्षेप। इन चुनौतियों के बावजूद, धर्मनिरपेक्षता भारतीय समाज में सामाजिक सामंजस्य और न्याय के लिए आवश्यक है। यह न केवल संविधान का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, बल्कि यह भारतीय समाज की बहुलता और विविधता को संरक्षित रखने का एक माध्यम भी है।

कैनेल, एफ. (2010)। धर्म निरपेक्षता का नृविज्ञान एक ऐसा अध्ययन है, जो समाज में धर्म और राजनीति के बीच के जटिल संबंधों को समझने का प्रयास करता है। नृविज्ञान के दृष्टिकोण से, धर्मनिरपेक्षता केवल एक कानूनी या राजनीतिक सिद्धांत नहीं है, बल्कि यह समाज की सांस्कृतिक, सामाजिक और ऐतिहासिक संरचनाओं से भी जुड़ी हुई है। धर्मनिरपेक्षता का नृविज्ञान यह अध्ययन करता है कि कैसे विभिन्न सांस्कृतिक समूहों और धार्मिक समुदायों के बीच शक्ति, अधिकार और पहचान के संघर्ष धर्मनिरपेक्ष सिद्धांत के कार्यान्वयन को प्रभावित करते हैं। यह सिद्धांत समाज में धार्मिक पहचान के निर्माण, धार्मिक भेदभाव और असहिष्णुता के उद्भव को भी समझने में मदद करता है। नृविज्ञान के अनुसार, धर्मनिरपेक्षता का उद्देश्य न केवल धर्म से राज्य के पृथक्करण को सुनिश्चित करना है, बल्कि यह भी सुनिश्चित करना है कि विभिन्न धर्मों के बीच संघर्ष और असहमति से बचते हुए समानता और सामाजिक समरसता को बढ़ावा दिया जाए। इसके तहत, धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा का उपयोग विभिन्न सांस्कृतिक और धार्मिक पहचान के संवेदनशील क्षेत्रों में मध्यस्थता के रूप में किया जाता है। धर्मनिरपेक्षता का नृविज्ञान समाज में धार्मिक विविधता और सहिष्णुता को बनाए रखने के लिए आवश्यक है, और यह इस

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

बात की भी पड़ताल करता है कि समाज में धार्मिक पहचान कैसे प्रकट होती है और उसे नियंत्रित किया जाता है।

तेजानी, एस. (2021)। "भारतीय धर्मनिरपेक्षता: एक सामाजिक और बौद्धिक इतिहास, 1890-1950" (Indian Secularism: A Social and Intellectual History, 1890–1950) शबनम तिजानी द्वारा लिखित एक महत्वपूर्ण शोध है, जो भारतीय धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा के विकास और उसके सामाजिक-राजनीतिक संदर्भों का विश्लेषण करती है। यह पुस्तक विशेष रूप से 19वीं और 20वीं शताब्दी की शुरुआत से लेकर भारतीय संविधान की स्वीकृति (1950) तक के कालखंड में धर्मनिरपेक्षता और सांप्रदायिकता के विचारों के सामाजिक और बौद्धिक इतिहास को प्रस्तुत करती है। तिजानी का यह अध्ययन दिखाता है कि भारतीय धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा केवल धार्मिक सहिष्णुता तक सीमित नहीं थी, बल्कि यह राष्ट्रीयता, सांप्रदायिक पहचान और सामाजिक न्याय के विचारों से गहरे रूप से जुड़ी हुई थी। उन्होंने यह भी बताया कि धर्मनिरपेक्षता का विकास मुस्लिम और दलित समुदायों के अधिकारों की रक्षा के लिए एक रणनीति के रूप में हुआ, जो हिंदू बहुसंख्यकवाद की चुनौतियों का सामना कर रहे थे।

अनुसंधान समस्या

भारत में धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा और उसकी चुनौतियाँ एक जटिल और बहुपक्षीय विषय है, जो विभिन्न सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक दृष्टिकोणों से जुड़ा हुआ है। अनुसंधान समस्या यह है कि कैसे भारत में धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा को समाज के विभिन्न वर्गों द्वारा समझा जाता है और इसका प्रभाव किस हद तक संविधान और राज्य नीति पर पड़ा है। भारत में धर्मनिरपेक्षता का सिद्धांत संविधान में स्पष्ट रूप से उल्लेखित है, लेकिन इसके वास्तविक कार्यान्वयन में कई समस्याएँ उत्पन्न होती हैं, जैसे सांप्रदायिक हिंसा, धार्मिक असहमति, और राजनीतिक ध्रुवीकरण।

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

अनुसंधान का मुख्य उद्देश्य यह है कि इन समस्याओं का विश्लेषण कर यह समझा जाए कि कैसे धार्मिक उन्माद और सांप्रदायिक तनाव धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा को कमजोर कर रहे हैं। इसके साथ ही, यह जानने की आवश्यकता है कि धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा का पालन करते हुए विभिन्न धार्मिक समुदायों के अधिकारों को कैसे सुनिश्चित किया जा सकता है। यह अनुसंधान समाज में धर्मनिरपेक्षता के लागू होने में आने वाली बाधाओं का समाधान भी तलाशेगा, विशेष रूप से धार्मिक पहचान की राजनीति और अल्पसंख्यक समुदायों के अधिकारों के संदर्भ में। इस प्रकार, अनुसंधान समस्या यह है कि धर्मनिरपेक्षता के सिद्धांत को भारतीय समाज में व्यावहारिक रूप से कैसे लागू किया जाए, ताकि समरसता और समानता को बढ़ावा दिया जा सके।

निष्कर्ष

भारत में धर्मनिरपेक्षता केवल एक संवैधानिक प्रावधान या राजनीतिक नारा नहीं है, बल्कि यह भारतीय समाज की बहुलतावादी संरचना और लोकतांत्रिक मूल्यों की आत्मा है। इसकी अवधारणा इस विचार पर आधारित है कि राज्य किसी एक धर्म का पक्षधर न होकर सभी धर्मों के प्रति समान सम्मान और निष्पक्षता बरते तथा नागरिकों को अपने विश्वास और आस्था के अनुसार जीवन जीने की स्वतंत्रता दे। व्यवहारिक स्तर पर धर्मनिरपेक्षता ने भारतीय समाज को विविधताओं के बीच एकता बनाए रखने और सामाजिक सद्भाव को सुदृढ़ करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। फिर भी इसके समक्ष अनेक चुनौतियाँ विद्यमान हैं—सांप्रदायिक हिंसा, धार्मिक ध्रुवीकरण, वोट बैंक की राजनीति, मीडिया और सोशल मीडिया में बढ़ता धार्मिक उन्माद, तथा बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक समुदायों के बीच अविश्वास की खाई। ये सभी कारक धर्मनिरपेक्ष ढाँचे को कमजोर करते हैं और लोकतांत्रिक मूल्यों को संकट में डालते हैं। ऐसे समय में आवश्यक है कि संवैधानिक संस्थाएँ अपनी निष्पक्षता बनाए रखें, राजनीतिक दल धर्मनिरपेक्ष मूल्यों को प्राथमिकता दें, और नागरिक समाज सक्रिय रूप से सहिष्णुता, संवाद और सामाजिक न्याय की संस्कृति को बढ़ावा दे। शिक्षा और जागरूकता के माध्यम से नागरिकों में धर्मनिरपेक्ष चेतना को मजबूत किया जा सकता है, जिससे विविधताओं के बीच एकता कायम रहे। अंततः, धर्मनिरपेक्षता भारतीय लोकतंत्र की पहचान और स्थायित्व का आधार है, और इसके संरक्षण के बिना सामाजिक सद्भाव, समानता तथा राष्ट्रीय एकता की कल्पना अधूरी है।

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

संदर्भ

1. सिंह, आर., और सिंह, के. (2011)। भारत में धर्मनिरपेक्षता: चुनौतियाँ और इसका भविष्य। इंडियन जर्नल ऑफ पॉलिटिकल साइंस, 501-509।
2. अली, एम.एम. (2015)। भारत में धर्मनिरपेक्षता: अवधारणाएँ, ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य और चुनौतियाँ। एशिया पैसिफिक जर्नल ऑफ रिसर्च वॉल्यूम: I. अंक XXIV।
3. वर्मा, वी. (2017)। भारत में धर्मनिरपेक्षता (पृष्ठ 214-230)। न्यूयॉर्क: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
4. कैनेल, एफ. (2010)। धर्मनिरपेक्षता का नृविज्ञान। नृविज्ञान की वार्षिक समीक्षा, 39(2010), 85-100।
5. तेजानी, एस. (2021)। भारतीय धर्मनिरपेक्षता: एक सामाजिक और बौद्धिक इतिहास, 1890-1950। इंडियाना यूनिवर्सिटी प्रेस।
6. घोबादजादेह, एन. (2014)। धार्मिक धर्मनिरपेक्षता: इस्लामी राज्य के लिए एक धार्मिक चुनौती। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
7. बेडर, वी. (2010)। धर्मनिरपेक्षता का संवैधानिककरण, वैकल्पिक धर्मनिरपेक्षता या उदार-लोकतांत्रिक संवैधानिकता? 'धर्मनिरपेक्षता' पर तुर्की, ईसीटीएचआर और भारतीय सुप्रीम कोर्ट के कुछ मामलों का आलोचनात्मक वाचन। यूट्रेक्ट लॉ रिव्यू, 8-35।
8. चटर्जी, पी. (2010)। साम्राज्य और राष्ट्र: चयनित निबंध। कोलंबिया यूनिवर्सिटी प्रेस।
9. कविराज, एस. (2014)। भारत में राज्य, समाज और प्रवचन पर। तीसरी दुनिया की राजनीति पर पुनर्विचार (पृष्ठ 72-99)। रूटलेज।
10. मेडोरा, एन. पी. (2014)। भारतीय परिवार में ताकत और चुनौतियां। दुनिया भर में मजबूत परिवारों में (पृष्ठ 165-194)। रूटलेज।